ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292RNI
REG. NO. UPBIL/2014/66218 **PP. No.- 132-134**

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-18, No.-III, Issues-33, YEAR-July-Sept. 2024

आदिवासी संस्कृति, आस्थाएँ और जीवन शैली

शशांक पाण्डेय

शोध अध्येता– हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ0प्र0) भारत

Received-14.07.2024, Revised-21.07.2024, Accepted-26.07.2024 **E-mail : vijayanand8385@gmail.com**

सारांशः भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों को समझने के लिए हमें ऐतिहासिक दृष्टिकोण से वर्ण व्यवस्था से गुजरते हुए वर्तमान में जाति आधारित समाज की संरचना तक का अध्ययन करना होता है। जहाँ तक आदिवासी समुदायों का प्रश्न है, वे इस सामाजिक प्रणाली का हिस्सा न होकर अलग–थलग रहकर अस्तित्व में आए समूह हैं, जिन्हें वर्ण और जाति आधारित समाज से अलग देखा जाना चाहिए। व्यवसाय के आधार पर बनने वाली श्रेणियों की दृष्टि से भी आदिवासी समुदाय भौगोलिक, सांस्कृतिक, और नृवंशीय दृष्टिकोण से विशेष माना जाता रहा है।

कुंजीभूत शब्दः आदिवासी संस्कृति, आस्थाएँ, जीवन शैली, ऐतिहासिक दृष्टिकोण, जाति आधारित समाज, आदिवासी समुदाय

भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों को समझने के लिए हमें ऐतिहासिक दृष्टिकोण से वर्ण व्यवस्था से गुजरते हुए वर्तमान में जाति आधारित समाज की संरचना तक का अध्ययन करना होता है। जहाँ तक आदिवासी समुदायों का प्रश्न है, वे इस सामाजिक प्रणाली का हिस्सा न होकर अलग–थलग रहकर अस्तित्व में आए समूह हैं, जिन्हें वर्ण और जाति आधारित समाज से अलग देखा जाना चाहिए। व्यवसाय के आधार पर बनने वाली श्रेणियों की दृष्टि से भी आदिवासी समुदाय भौगोलिक, सांस्कृतिक, और नृवंशीय दृष्टिकोण से विशेष माना जाता रहा है।

आदिवासी समाज को मुख्यधारा के समाज से अलग माना जाता है। *"भारत में करीब 427 आदिवासी जातियाँ रहती हैं"*।[1] इन जातियों में प्रत्येक की अपनी विशिष्ट संस्कृति, भाषा और इतिहास है। भारतीय संविधान में आदिवासियों के लिए 'अनुसूचित जनजाति' शब्द का उपयोग किया गया है। प्राचीन संस्कृत साहित्य में आदिवासी समुदायों के लिए असुर, दस्यु, निषाद, राक्षस, वानर जैसे नामों का उल्लेख किया गया है। इण्डोनेशिया में इन्हें भूमिपुत्र, अफ्रीका व अमेरिका में प्रीमिटिव अर्थात प्राचीनतम रूप और आस्ट्रेलिया में अनक्षर जनजाति कहा गया। आदिवासी शब्द एक छत्रनुमा पद है जिसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की जाति एवं समूह वाले ट्राइबल को रखा गया है जो कि भारत के मूलनिवासी होने का दावा करते हैं। मित्रेश्वर, आदिवासी समाज और गैर आदिवासी समाज के बीच अंतर बताते हुए लिखते हैं– *"वह समुदाय, जो आदिकालीन और प्राचीन परंपराएं, अपने पारिवारिक–सामाजिक और जीवन में, व्यवहार करता हैरू आदिवासी है। जन्म से मृत्यु तक चलने वाले संस्कार, ऋतुओं के आधार पर होने वाले उत्सव, पारिवारिक और सामुदायिक रीति–रिवाज, प्रणाली की पारंपरिकता, आदिवासी होना निर्धारित करते हैं। जहां विरासत संरक्षित है वह आदिवासी, जिन समुदायों ने निरंतर अपनी मान्यताएँ–प्रणाली–जीवन दर्शन, मन–वचन–कर्म में बदलाव जारी रखा है वह, गैर आदिवासी"*।[2] आदिवासियों की संचित विरासत उनकी विशिष्ट सामुदायिक पहचान है। आदिवासी शब्द दो शब्दों के मेल से बना है, 'आदि' और 'वासी। इसका अर्थ है मूल निवासी।

'भारतीय संस्कृति कोश' में आदिवासी शब्द की व्याख्या इस प्रकार मिलती है– *"ऐसे निवासी जो किसी क्षेत्र के मूल निवासी हों और ऐसे निवासी जो प्राचीनतम निवासी हों। दूसरी कोटि के व्यक्तियों के लिए किसी क्षेत्र के मूल निवासी होना आवश्यक नहीं है"*।[3]

आदिवासी संस्कृति को समझने के लिए 'प्रकृति' और 'संस्कृति' के बीच के अंतर और उनके आपसी संबंधों पर विचार करते हुए चर्चा शुरू की जा सकती है। प्रकृति वह दृश्य खगोलीय और भौगोलिक तत्वों की रचना है जो स्वाभाविक होती है। इसका स्वरूप मौलिक भी होता है और परिवर्तनशील भी। साधारण रूप में कहा जा सकता है कि यह जीव जगत से अलग एक परिवेश है जिसमें प्रकृति के जड़ और चेतन दोनों तत्वों का अस्तित्व होता है। अन्य जीवों की संस्कृति को वृत्ति (instinct) आधारित व्यवहार कहना सही होगा, जिसमें विशेष परिवेश और प्रशिक्षण से ही परिवर्तन संभव हो सकता है। इससे परे, संस्कृति का सीधा संबंध मानव समाज से है, जिसकी निर्माण और विकास अर्जित संस्कारों पर निर्भर करता है। ये संस्कार वंशानुगत, सामाजिक और विभिन्न मानव–समुदायों के आपसी संपर्क से उत्पन्न होते हैं। सकारात्मक अर्थ में संस्कृति के प्रमुख तत्व सौंदर्य बोध और उससे उत्पन्न आनंद और कल्याण की कला हैं। इसकी प्रत्यक्ष अनुभूति कला–प्रस्तुतियों और लोकाचार के स्तर पर होती है। सभ्यता और भौतिक विकास के अनुसार संस्कृति अपना स्वरूप धारण करती जाती है। इस रूप में संस्कृति मानव निर्मित होती है, लेकिन मनुष्य का जीवन अंततः प्रकृति पर निर्भर रहता है।

इसलिए प्रकृति तत्वों से संस्कृति का जुड़ाव अनिवार्य होता है। प्रकृति से निकटता और मानव निर्मित होने के कारण संस्कृति का स्थान प्रकृति और कृत्रिमता के बीच कहीं होता है। जिन मानव–समुदायों की संस्कृति प्रकृति से निकटता रखकर विकसित होती है, वे अधिक सौंदर्यबोधी, आनंददायक और कल्याणकारी होती हैं। दूसरी ओर, जो संस्कृति प्रकृति से दूर हटती जाती है, वह शास्त्रीय, व्याकरणीय, औपचारिक, प्रतिमान आधारित, सजावटी और नीरस बनती जाती है। लोक और सभ्य समाज की संस्कृतियों के बीच का अंतर यहां स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगता है। निस्संदेह, लोक संस्कृति का आधार मुख्यतः आदिम समुदायों की संस्कृति पर होता है। इस पृष्ठभूमि में आदिवासी संस्कृति को सही तरीके से समझा जा सकता है। रमणिका गुप्ता अपनी पुस्तक में कहती हैं कि किस प्रकार से आर्यों ने आदिवासी विचारों के अपहरण के साथ उनकी संस्कृति और उनके महापुरुषों का भी अपहरण किया है *"आर्यों ने इनके विचारों का अपहरण तो किया ही, साथ ही*

अनुरूपी लेखक / संयुक्त लेखक

इनके महापुरुषों और विदुषियों का अपहरण भी किया। उस मातृसत्तात्मक आदिवासी व्यवस्था में औरत का स्थान सबसे ऊंचा था। आर्यों ने स्त्री को मात्र पूजा की वस्तु बनाकर उन्हें अधिकार–विहीन किया। यूं तो संस्कृतियों का अपहरण विश्वभर में हुआ है, लेकिन भारत ने आदिवासी संस्कृति को बहिष्कृत करने का जघन्य अपराध किया है"।

आदिवासी संस्कृति में ईश्वर या आत्मा की बजाय, प्रकृति का प्रमुख स्थान है। मनुष्य इस प्रकृति के साथ जीवन व्यतीत करता है, उसी के साथ वह पनपता और बढ़ता है, और अंततः उसी में विलीन हो जाता है। मरने के बाद भी वह प्रकृति के विकास के लिए खाद बन जाता है। उसकी हड्डियां और कंकाल धरती को उर्वरक बनाते हैं, न कि उस पर कब्जा करते हैं। आदिवासी मान्यताओं के अनुसार, शरीर का मिट्टी का हिस्सा मिट्टी में, पानी का हिस्सा पानी में, ऊर्जा अग्नि में, और श्वास हवा में मिल जाती है। इन आस्थाओं का उल्लेख 'आदि–धर्म' में भी मिलता है। झारखंड में इसे 'सरना' के नाम से जाना जाता है। विभिन्न आदिवासी समूहों की अलग–अलग क्षेत्रों में अलग–अलग आस्थाएं हैं। एक तत्व, जो सभी में समान है, वह है प्रकृति के प्रति आस्था और उसके साथ सहजीवन का सामूहिक जीवन, समानता, स्वतंत्रता और भाईचारे का सिद्धांत।

रमणिका गुप्ता कहती हैं *"आदिवासी सभ्यता समानता की सभ्यता है। वह वर्चस्ववादी सभ्यता कभी नहीं रही। आदिवासी जीवनशैली में मनुष्य और प्रकृति तथा उसके जीव–जंतु साथ–साथ जीते हैं, साथ–साथ कष्ट झेलते हैं, हँसते–गाते हैं, रोते–बिसूरते हैं। इनके पहाड़, इनकी नदियां, हवा या आग इनके देवता हैं। अपने देवता को ये बोंगा कहते हैं। ये बोंगा डरते नहीं, बल्कि उससे हिल–मिलकर रहते हैं। इनके बोंगा (देवता) इन्हें एक दोस्त की तरह, सलाहकार की तरह नियंत्रित करते हैं। वे कोई इतर शक्ति नहीं हैं, बल्कि वे इनके और ये उनके अंश हैं। इसलिए इन्हें अपने देवता के लिए कभी किसी मंदिर और मस्जिद की दरकार नहीं होती। पूरी धरती, पूरी वनस्पति या प्रकृति उनकी है, जिसकी रक्षा करना ये अपना कर्त्तव्य मानते हैं और इनका यह भी दृढ़ विश्वास है कि प्रकृति इन्हें पालती–पोसती है"*।[5] विभिन्न संस्कृतियों के आपसी संपर्क से उत्पन्न प्रभाव एक दूसरे से सीखने की स्थिति पैदा करता है, जो संस्कृति को उन्नत करता है। इसके विपरीत, वर्चस्व, दबाव और संघर्ष की स्थितियों से संस्कृति में अंतर्निहित मानवीय मूल्यों का ह्रास होता है। यह प्रवृत्ति आदिम और तथाकथित मुख्यधारा की संस्कृतियों के बीच होने वाले अंतर्क्रियात्मक संबंधों में देखी जा सकती है।

मानतेंदू कुण्डु ने अपने एक लेख में बताया है कि *"मध्य भारत के गौण्ड लोगों के कुछ परिवारों ने स्थानीय हिन्दू धर्म के प्रभाव स्वरूप समाज सुधार /आन्दोलन की शुरुआत की जिसमें स्त्री–पुरुषों द्वारा एक साथ मद्यपान व नृत्य आदि करने पर रोक लगायी। इससे पुरुष व स्त्रियों की सामूहिकता पर विपरीत प्रभाव पड़ा। महिलाएं पर्दानशीन हुई, बच्चों का विवाह बाल्यावस्था में किया जाने लगा व मूल धारा के हिन्दुओं को 'मॉडल' माना जाने लगा और वे आदिवासी जनहीन भावना से ग्रसित होने लगे। उन तथाकथित समाज सुधारकों की धारणा थी कि इससे गौण्ड समाज हिन्दुओं द्वारा सम्मान पा सकेगा जो सर्वथा गलत साबित हुआ"*।[6]

ब्रिटेन के प्रसिद्ध नृतत्य–वैज्ञानिक वेरियर एल्विन (जिन्होंने बाद में भारतीय नागरिकता ग्रहण कर ली थी) बताते हैं कि "मिशनरियों की आदिवासियों के प्रति असहिष्णुता की वजह से बहुत सारे अच्छे सामाजिक रीति–रिवाज तो खत्म हुए ही, यहाँ तक कि नृत्य, गीत तथा ताँत बुनायी जैसे उन्नत सांस्कृतिक–आर्थिक क्रिया–कलाप भी ध्वस्त हो गये"।[7] आदिवासी समाज की संस्कृति अत्यंत विविधतापूर्ण और समृद्ध है। यह विभिन्न समुदायों और भौगोलिक क्षेत्रों के अनुसार भिन्न–भिन्न होती है, लेकिन कुछ सामान्य विशेषताएँ हैं जो अधिकांश आदिवासी समाजों में पाई जाती हैं। आदिवासी समाजों में परंपराओं और रीति–रिवाज़ों का अत्यधिक महत्व होता है। ये परंपराएँ पीढ़ियों से चली आ रही हैं और समाज के सदस्यों की जीवनशैली, उत्सव, और धार्मिक विश्वासों में गहराई से रची–बसी होती हैं। प्रत्येक आदिवासी समूह के अपने त्योहार, नृत्य, संगीत और कला के रूप होते हैं।

सम्पूर्ण विश्व में मानव समाज के स्तर पर धर्म की धारणा को स्वीकृति मिली है। धर्म को अतिमानवीय, अलौकिक, आध्यात्मिक, पराभौतिक, परलोक या ईश्वर के विभिन्न अर्थों में समझने की कोशिश की गई है। सरल शब्दों में कहा जा सकता है कि किसी अलौकिक शक्ति के प्रति आस्था या विश्वास की मानसिकता को धर्म कहा जा सकता है, जिसमें साकार या निराकार ईश्वरीय तत्व को किसी न किसी रूप में शामिल माना जा सकता है।

जब धर्म की चर्चा होती है, तो धर्म के दो आयाम सामने आते हैं। पहला, धर्म का प्रारंभिक रूप जिसे हम आदि धर्म कहते हैं, और दूसरा, धर्म का संस्थागत रूप। आदि धर्म की श्रेणी में मुख्य रूप से लोक में प्रचलित धार्मिक मान्यताएँ आती हैं, जिनमें कोई अमूर्त या अवतरित ईश्वर नहीं होते, बल्कि लोक–देवता होते हैं। ये लोक–देवता वास्तव में मनुष्य रूप में जन्म लेते हैं और अपने महान कार्यों के कारण देवता के रूप में प्रतिष्ठित हो जाते हैं। ऐसे 'महान व्यक्ति जो लोक देवता बने' वास्तव में धार्मिक मिथकों के रूप में मान्यता प्राप्त करते रहे हैं। जब इनसे संबंधित तिथि या विशेष अवसर धार्मिक उत्सव या मेलों के रूप में मान्यता प्राप्त करने लगते हैं, तो ये अवसर एक संस्थागत रूप धारण कर लेते हैं। आदि धर्म इन लोक धार्मिक मान्यताओं से पूर्व के समय का प्रतिनिधित्व करता है, जो मुख्य रूप से प्रकृति तत्वों पर आधारित रहा है और जिसके मूल स्वरूप में अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है। हालांकि विभिन्न अवसरों को मनाने की परंपरा अवश्य विकसित हुई है, लेकिन यह प्रकृति तत्वों या ऋतुओं के आगमन या फसल आदि से संबंधित ही मिलती है।

अधिकांश आदिवासी समाज प्रकृति पूजक होते हैं। वे सूर्य, चंद्रमा, पेड़–पौधे, नदियों, और अन्य प्राकृतिक तत्वों की पूजा करते हैं। उनके धार्मिक अनुष्ठानों में समुदाय की सहभागिता होती है और इन्हें प्रकृति के प्रति सम्मान और आभार के रूप में देखा जाता है।रमणिका गुप्ता कहती हैं "हालांकि आदिवासी के पास दूसरे धर्म की तरह धर्म की अवधारणा नहीं है,

फिर भी आस्था के रूप में उनके भिन्न–भिन्न कबीलों में भिन्न–भिन्न विश्वास मौजूद हैं। ऑस्ट्रिक नस्ल के आदिवासियों में 'सखुआ के सात पेड़ों' वाला झुरमुट 'सरना' कहलाता है, जो उनके लिए पूज्य है। बड़ी–बड़ी चट्टानों को वे थान या जाहेरथान कहते हैं, जिन्हें वे प्रकृति की धरोहर मानते हैं। वे लोग स्पिरिट, अच्छी या बुरी में विश्वास रखते हैं और उनकी तुष्टि के लिए मुर्गे की बलि भी चढ़ाते हैं, लेकिन इन सब अनुष्ठानों के लिए कोई निश्चित पूजा–स्थल नहीं होता। उनके लिए संपूर्ण प्रकृति ही पूज्य है। वे उसे मां की तरह पोषक मानते हैं। इसलिए उनकी आस्था मानवीय है, उदार है"।8 हरिराम मीणा अपनी पुस्तक 'आदिवासी दुनिया' में लिखते हैं "आदिवासियों का प्रकृति पर आधारित धर्म है और प्रकृति तत्व सारी पृथ्वी के सलए जीवनदायनी तत्व है। यहाँ कोई साम्प्रदायिक कट्टरता को स्थान नहीं। यह धर्म सभी मनुष्यों की धार्मिक आस्थाओं का आधार या केन्द्रीय तत्व बनने की क्षमता रखता है। इसको स्वीकार करने या इसकी ताकत को पहचानने से अन्य धर्मो में कट्टर होने के जो सम्भावित तत्व हैं उन्हें समाप्त किया जा सकेगा जो साम्प्रदायिक तो हे गुजरकर अन्ततः आंतकवाद को जन्म देते हैं"।9 धर्म की इस अवधारणा के अनुसार, मृत्यु के बाद मनुष्य किसी परलोक स्थित स्वर्ग या नरक में न जाकर अपने ही घर लौटता है और एक अमूर्त शक्ति के रूप में घर के लोगों को प्रेरित करता रहता है। यदि वह व्यक्ति महान कार्यों को करने वाला रहा है, तो उसे लोक देवता के रूप में मान्यता मिल जाती है।

इसके अनुष्ठान बहुत सरल होते हैं। इनका पुजारी स्वयं समुदाय से होता है। उसे हिन्दू वेद–मंत्रों को सीखने की आवश्यकता नहीं होती। अनुष्ठान में उपयोग की जाने वाली सामग्री घर या गाँव में ही उत्पन्न या निर्मित होती है। सभी धार्मिक आयोजन सामूहिक भागीदारी पर आधारित होते हैं, और समानता की भावना को महत्व दिया जाता है। सभी धार्मिक अवसर सांस्कृतिक रूप में मनाए जाते हैं। भारत में संथाल जनसंख्या के हिसाब से सबसे अधिक आदिवासी समूह हैं, जो मुख्यतः झारखण्ड और बिहार में रहते हैं। लेखक ने विस्तार से संथाल सहित अन्य क्षेत्रीय आदिवासियों जैसे मुण्डा, हो आदि के धार्मिक पक्षों का वर्णन किया है। इनके प्रमुख त्योहारों में सरहुल है, जिसे उनका वसंतोत्सव (प्रकृति पर्व) कहा जा सकता है। दूसरा बड़ा पर्व करमा है, जो कृषि पर्व के रूप में मनाया जाता है। मवेशियों के लिए सोहराई पर्व और वर्ष के अंत में फागुन मास की पूर्णिमा को आखेट पर्व मनाया जाता है। पर्व के दौरान सामूहिक शिकार का वितरण पूरे गाँव में किया जाता है। जिन परिवारों में पुरुष या शारीरिक रूप से सक्षम सदस्य नहीं होते, उन घरों में भी शिकार का हिस्सा दिया जाता है।भेलवा पूजा खरीफ की फसल की बुआई के बाद अगस्त–सितंबर में होती है, जिसमें भेलवा वृक्ष की टहनियों को धान के खेत में बीच–बीच में गाड़ा जाता है। वैज्ञानिक शोध के अनुसार, भेलवा पेड़ में कीटनाशक तत्वों का उच्च स्तर होता है, जो फसल के लिए लाभकारी है। आयुर्वेद में भेलवा का तेल एक शक्तिशाली कीटनाशक के रूप में जाना जाता है। झारखण्ड में आदिवासियों के धर्म को सरना, छत्तीसगढ़ के गोंड धर्म को गौण्डी, और राजस्थान–गुजरात–मध्यप्रदेश के भीलों के धर्म को भीली कहा जाता है। इन धर्मों का कोई वास्ता नहीं होता। आदिवासी समुदायों के सभी धर्म मिलकर आदिवासी धर्म, अर्थात आदि धर्म कहलाते हैं।

आदिवासी समाजों में सामूहिकता और सहयोग पर जोर दिया जाता है। सामाजिक और आर्थिक गतिविधियों में समुदाय का योगदान महत्वपूर्ण होता है। वे संसाधनों को साझा करने, समूह के रूप में शिकार करने, खेती करने, और आपस में मदद करने की संस्कृति में विश्वास रखते हैं। आदिवासी समाजों की अपनी विशिष्ट भाषाएँ होती हैं, जो उनकी सांस्कृतिक पहचान का महत्वपूर्ण हिस्सा होती हैं। इनमें से कई भाषाएँ लिपिबद्ध नहीं हैं और मौखिक परंपरा के माध्यम से पीढ़ियों तक चली आती हैं। लोकगीत, कहानियाँ, और दंतकथाएँ इन समाजों की सांस्कृतिक धरोहर होती हैं। साथ ही आदिवासी समाजों की कला और हस्तशिल्प उनके जीवन के विभिन्न पहलुओं से प्रेरित होती हैं। उनकी कला में प्राकृतिक रंगों और सामग्री का उपयोग होता है। चित्रकला, मूर्तिकला, बुनाई, और गहनों की डिज़ाइन में उनकी संस्कृति और धार्मिक विश्वासों की झलक मिलती है। आदिवासी समाजों का सामाजिक ढाँचा पारंपरिक होता है, जिसमें जनजाति, कुल, और परिवार का विशेष महत्व होता है। इनमें बड़े बुजुर्गों का सम्मान और समाज में उनकी सलाह का महत्व होता है। आदिवासी समाजों के पास पारंपरिक ज्ञान की अपार संपदा होती है, जो कृषि, चिकित्सा, वन्य जीवन, और पर्यावरण के संरक्षण से संबंधित होती है। यह ज्ञान पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होता है और आधुनिक विज्ञान के लिए भी उपयोगी साबित हो सकता है। आदिवासी समाज की संस्कृति में जो विविधता और समृद्धि है, वह भारत की सांस्कृतिक विरासत का महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसे संरक्षित करने और समझने की आवश्यकता है ताकि यह अनमोल धरोहर नष्ट न हो।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. वीर भारत तलवार, झारखंड के आदिवासियों के बीच, पृ. सं.– 33.
2. मित्रेश्वर, इस्पातिका, अंक–1 वर्ष 2 जनवरी–जून, 2012 पृ.– 158.
3. लीलाधर शर्मा, भारतीय संस्कृति कोश, पृ.–98.
4. रमणिका गुप्ता, आदिवासी अस्मिता का संकट, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ– 85.
5. वही पृष्ठ– 86.
6. हरिराम मीणा, आदिवासी दुनिया, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, पृ. सं.–90.
7. वही पृ. सं.–90.
8. रमणिका गुप्ता, आदिवासी अस्मिता का संकट, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–88.
9. हरिराम मीणा, आदिवासी दुनिया, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, पृ. सं.–111.

*****